Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

कृष्णा सोबती की कथाओं में स्त्री का व्यक्तित्व और टूटती सीमाएँ

चन्दन कुमार
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

सार,

भारतीय समाज एवं साहित्य में नारी की प्रस्थिति प्रारंभ से ही परिवर्तनशील एवं जटिल रही है। वैदिक युग में नारी की स्थिति सम्मानजनक थी, वह उच्च शिक्षा की अधिकारी थी और अपनी मर्जी से विवाह करने को स्वतंत्र थी। इस युग में घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी और आत्रेयी जैसी प्रसिद्ध विदुषियाँ हुई, जिन्होंने कई ऋचाओं की रचना की। इस युग में नारी को पर्याप्त स्वतंत्रता थी। बी. कुप्पुस्वामी के अनुसार "…. पति-पत्नी दोनों संयुक्त रूप से संपत्ति के अधिकारी होते थे।"[1] समाज में विधवा-विवाह का भी प्रचलन था। कुल मिला कर स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। लेकिन उनके लिए एक सामाजिक दायरा बना हुआ था, अर्थात् वे पुरुष से श्रेष्ठ नहीं समझी जाती थीं। याज्ञवल्क्य और गार्गी संवाद के दौरान गार्गी के प्रश्नों से परेशान याज्ञवल्क्य कह उठते हैं कि अधिक बहस न करो अन्यथा तेरा सिर कट जाएगा।

विस्तार

वैदिक युग के पश्चात अनेक सामाजिक परिवर्तनों के कारण नारी की स्थिति में बहुत गिरावट आई। मनुस्मृति के अनुसार, सदाचार से हीन, पर-स्त्री अनुरक्त और विद्या आदि गुणों से हीन पति भी पतिव्रता स्त्रियों को देवता के समान पूज्य होता है-

"विशीलाः कामवृत्रो ब्रा गुणर्वा परिवर्जितः।
उपचर्य : स्त्रियासाधव्या सततं देववत्पतिः।।" 2

बौद्ध धर्म के प्रचार- प्रसार के परिणामस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार आया। बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश को लेकर बुद्ध तथा उनके शिष्य आनंद के बीच बहस छिड़ी, क्योंकि बुद्ध स्त्रियों को प्रवेश देने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन आनंद के हस्तक्षेप के कारण स्त्रियों को संघ में प्रवेश संभव हुआ। उमा चक्रवर्ती ने आनंद को पहला पुरुष स्त्रीवादी कहा है। उमा चक्रवर्ती के शब्दों में, "आनंद की विशेषता यह है कि वह उन स्त्रियों के वकील की सी भूमिका उठाता है, जो संघ में आने का आंदोलन चला रही हैं। वह उन सारे मुददा को उठाता है। जो स्त्रियों के विरूद्ध हैं और स्त्रियों के पक्ष में दलीलें पेश करता है। वह बुद्ध से बाकायदा बहस करता है कि स्त्रियाँ संघ से क्यों नहीं जुड़ सकती हैं। अंततः बुद्ध उसके तर्कों से सहमत होकर मान जाते हैं कि स्त्रियों को संघ में आने दिया जाए।"[3] इसक बावजूद बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों की प्रस्थिति में अंतर था। उमा चक्रवर्ती के अनुसार "कई ऐसे काम थे, जो बौद्ध भिक्षु कर सकते थे और भिक्षुणियाँ नहीं कर सकती थीं।

जैसे एक नियम था कि भिक्षुणी चाहे जितनी भी बुजुर्ग हो, उसे भिक्षुक को प्रणाम करना ही पड़ेगा, चाहे वह उम्र में उससे जितना भी छोटा हो।"[4]

मध्यकाल के भक्ति आंदोलन ने, जो कि एक जनांदोलन था, धर्म के माध्यम से महिलाओं को आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया। अपनी रचनाओं में इन्होंने यातना की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उस यातना से उबरने का प्रयास भी अभिव्यक्त किया है। मीरा के यहाँ सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह का स्वर अत्यंत प्रखर है,

"लोकलाज कुल कानि जगत की, दइ बहाय जस पानी
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी।"[5]

डॉ. मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, "यहाँ एक सजग स्त्री - स्वर सुनाई देता है जिसमें आक्रोश की अनुगूँज है किसी पीड़ित की चीख या पुकार नहीं।"[6] भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ नारी की सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन आया। पाश्चात्य साहित्य एवं सभ्यता-संस्कृति के संपर्क में आने पर शिक्षित भारतीयों में जागरूकता आई। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर एवं दादा भाई नौरोजी द्वारा चलाये गये सुधार आंदोलनों ने नारी की स्थिति में सुधार लाया। अब उसे एक व्यक्तित्व के रूप में स्वीकृति मिली। नारी को अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक करने तथा उसे घर की चहारदीवारी से मुक्त करा व्यापक जन-जीवन से जोड़ने में महात्मा गांधी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वाधीनता आंदोलन ने नारी स्वातंत्र्य आंदोलन को भी दिशा प्रदान की। नीरा देसाई के अनुसार, "इसने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की कि अनेक सामाजिक बंधन व वर्जनाएँ स्वयं ही सरलतापूर्वक समाप्त हो गईं।"[7] भारत की नारी को विस्तृत

दृष्टि एवं सोच प्रदान करने में स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महादेवी वर्मा के अनुसार, "देश को स्वतंत्र करवाने के लिए जब स्त्री घर की चहारदीवारी से बाहर आई और कर्मक्षेत्र में उतर कर उसने देश के सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों में अपना योगदान दिया तो उसने स्वयं में एक नवीन आत्मविश्वास, एक नवीन जागृति पाई। उसे अपना जीवन सार्थक अनुभव होने लगा व उसमें छाई हीनता की भावना दूर होने लगी। पुरुष ने अपनी आवश्यकतावश ही उसे साथ आने की आज्ञा दी, परन्तु स्त्री ने उससे पग मिलाकर चलकर प्रमाणित कर दिया कि पुरुष ने उसकी गति पर बन्धन लगाकर अन्याय ही नहीं अत्याचार भी किया है।"[8]

देश की आजादी ने भारतीय नारी को भी मानसिक पराधीनता एवं जर्जर, रूढ़ परम्पराओं से भी मुक्त कराया। देश के संविधान का निर्माण समानाता, एवं स्वतंत्रता के प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री एवं पुरुष के लिए समान अधिकार एवं अवसरों का आश्वासन दिया गया। शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, समानता एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण ने नारी की जीवन दृष्टि में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। आज नारी स्वयं के अस्तित्व को पुरुष के अस्तित्व में एकाकार कर नहीं देखती, बल्कि सह-अस्तित्व की चाह रखती है। वह चाहती हैं कि उसके लिए जो नैतिकता के प्रतिमान बनाए जाएँ, वही पुरुष वर्ग के लिए भी अपेक्षित हो। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने में आज नारी को कोई झिझक नहीं। उसे यह पता है कि, "मात्र मुक्ति की आकांक्षा ही काफी नहीं है, मुक्ति के प्रयत्न भी करने होंगे। अपनी जड़ता पर पहली चोट हमें खुद करनी होगी| "[9]

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्त्री को शिक्षित करने के सुधारवादी आंदोलन के पीछे भी पुरुषों के अपने लाभ थे। उमा चक्रवर्ती के अनुसार, "स्त्रियों को क्या चाहिए, यह भी पुरुष तय करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के पुरुषों को शिक्षित स्त्रियाँ इसलिए चाहिए थीं कि उस समय एक नया वर्ग बन रहा था, जिसके लिए एक नये ढंग की स्त्री की जरूरत थी। यह अंग्रेजी शिक्षा पाया हुआ अभिजन वर्ग था। इस वर्ग के पुरुष ऐसी स्त्री चाहते थे, जो घर में बच्चों को नये ढंग से पाले और बाहर 'सोसायटी' में या 'सोशल लाइफ' में पति के साथ निकल सके। वे अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते थे और उनकी 'हीरोईनों' को अपने आसपास देखना चाहते थे। वे बुद्धिजीवी थे और उन्हें ऐसी स्त्री की बड़ी चाह थी, जो उनकी बौद्धिक सहगामिनी हो। इसके लिए उन्हें स्त्रियों को शिक्षित करना जरूरी लग रहा था और इसीलिए वे गार्गी, मैत्रेयी आदि के उदाहरण सामने रख कर स्त्री-शिक्षा पर जोर दे रहे थे।"[10] इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों के लिए क्या वांछनीय है एवं क्या अवांछनीय, यह सोचन की स्वतंत्रता भी आजादी से पूर्व स्त्रियों को नहीं थी ।

ऊर्वशी बुटालिया के अनुसार, "..कोई बहुत बड़ा आंदोलन भी यदि पुरुषों के नेतृत्व में चलता है, तो भले ही उसमें स्त्रियाँ काफी बड़ी संख्या में शामिल हों, पितृसत्ता बनी रहती है। स्वाधीनता आंदोलन हमारा सबसे बड़ा आंदोलन था और उसमें स्त्रियाँ भी बहुत बड़ी संख्या में शामिल थीं। लेकिन उन्हें पुरुषों के पीछे ही रखा जाता था। गांधीजी ने नमक सत्याग्रह के लिए दांडी मार्च किया, तो कहा कि इसमें स्त्रियाँ नहीं जाएँगी, क्योंकि इतनी दूर चलने से वे थक जाएँगी। जब सरोजनी नायडू अड़ गयीं कि स्त्रियाँ भी चलेंगी, तब गांधीजी ने कहा कि ठीक है, चलो। और फिर सबसे ज्यादा काम स्त्रियों ने ही किया।"[11]

भारतीय समाज में स्त्रियों की राय को दरकिनार करने की परंपरा आदिकाल से चली आ रही है। ऊर्वशी बुटालिया के अनुसार, "जीवन के ऐसे कई क्षेत्र हैं, जिनमें स्त्रियों की राय नहीं ली जाती। मसलन, शिक्षा कैसी हो, फिल्में कैसी बनें, टी.वी. पर क्या दिखाया जाए, अखबारों में क्या छापा जाए, विज्ञापन किस तरह के बनाये जाएँ इन सब बातों का फैसला पुरुष करते हैं और इन कामों में स्त्रियों को सिर्फ इस्तेमाल करते हैं। नतीजा यह होता है कि शिक्षा और मीडिया वगैरह से हर जगह मर्दवादी दृष्टिकोण ही सामने आता है।... भारतीय स्त्री की जो छवि बनाई जाती है चाहे वह देवी की हो या वेश्या की उसमें कोई स्त्रियों से नहीं पूछता कि इन चीजों के बारे में उसका दृष्टिकोण क्या है। "[12]

आज औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण ने व्यक्ति स्वातंत्र्य के जिस नवीन जीवन मूल्य को जन्म दिया है, उसने नारी की मानसिकता एवं रहन-सहन को गहरे तौर पर प्रभावित किया है। आज नारी अपने व्यक्तित्व को स्वाधीन बनाए रखना चाहती है, जीवन के सभी क्षेत्र में पुरुष की बराबरी करना चाहती है, जबकि पुरुष सदियों से स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझ जाने के विशेषाधिकार को छोड़ना नहीं चाहता। परिणामस्वरूप स्त्री-पुरुष संबंधों में तनाव की स्थिति आ जाती है।

भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति में आने वाले परिवर्तन को तयुगीन साहित्य में भी अभिव्यक्ति मिली है। कृष्णा सोबती ने अपने कथा साहित्य में स्त्री के व्यक्तित्व में आ रहे परिवर्तन और उसके द्वारा सामाजिक नैतिक सीमाओं के अतिक्रमण को व्यक्त करने का प्रयास किया है। सोबती की नारी समाज की रूढ़ जर्जर मान्यताओं व प्रतिमानों को चुनौती देती है, तथा अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए हर संभव प्रयत्न करती है। वह अपने संवैधानिक अधिकारों को हासिल कर, अपने अस्तित्व को आकार देने का प्रयत्न करती है। कृष्णा सोबती ने एक स्त्री की दृष्टि से स्त्री के अंतर्मन की व्यथा, उसकी पीड़ा को समझने का प्रयत्न

किया है।

कृष्णा सोबती की नारी नारीत्व से मुक्ति की आकांक्षा नहीं रखती, बल्कि पितृसत्तात्मक मानसिकता से मुक्त होने की आकांक्षी है। वह नारीत्व को त्याग कर पुरुष का स्थानापन्न नहीं बनना चाहती, बल्कि अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक होना चाहती है, स्वयं को पहचानना चाहती है एवं अपने व्यक्तित्व को विकसित करना चाहती है। वह या तो देवी के रूप में चित्रित मेहरा और शीला जैसी पति परायण स्त्रियाँ मौजूद हैं तो दूसरी तरफ धन्नो और शम्भोजान जैसी वेश्याएँ भी।

परंपरा आबद्ध एवं परंपरामुक्त, नारी व्यक्तित्व के इन दोनों छोरों को ही समेट कर कृष्णा सोबतो अपना कथा संसार रचती हैं। सामाजिक रूढ़ियों और नैतिक सीमाओं को तोड़ती उनकी नारी आधुनिक नारी अस्मिता को प्रमाणित करती है।

संदर्भ

1. बी. कुप्पुस्वामी, सोशल चेंज इन इण्डिया, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1972, पृ. 177-178

2. ए. एल. बाशम, अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1999, पृ. 129,

3. रमेश उपाध्याय एवं संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आँदोलन, शब्दसंधान, नई दिल्ली, 2004, पृ. 10

4 वहीं पृष्ठ 12

5. डॉ. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 41

6. वही, पृ. 44

7. नीरा देसाई, वीमेन इन मॉडर्न इण्डिया, बोरा एण्ड को प्राइवेट लिमिटेड, मुंबई, 1957, पृ. 146

8. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993, पृ.48-49

9. डॉ. नामवर सिंह, परिवर्तन, 4-10 अगस्त, 1986, पृ.45

10. रमेश एवं संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आँदोलन, शब्दसंधान, नई दिल्ली,

2004, पृ.14

11. वही, पृ. 43

12. वही, पृ. 44